श्री साईलीलामृत

प्रथम अध्याय

अद्भुत सत्पुरूष

गुरूर्ब्रम्हा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वर: ।
गुरू: साक्षात्परब्रम्ह तस्मै श्रीगुरूवे नम: ।।

हमारा भारतवर्ष अत्यन्त प्राचीन काल से ही संत-साहित्य के लिए सुप्रसिद्ध है। हजारों संत इस पुण्य-भूमि पर प्रकट हुए तथा अपनी-अपनी विशिष्ट पद्धति से अपना अवतार-कार्य सम्पन्न करते हुए वे लोक-जाग्रति कर ब्रम्हा-लीन हो गये। यदि हम अपने प्राचीन सनातन धर्म का सूक्ष्म अध्ययन करें तो पायेंगे कि समय समय पर इस पुण्य भारत-भूमि पर अवतीर्ण अनेक अधिकारी व्यक्तियों ने इस विश्व की गहन-गूढ पहेली को स्वयं ही हल नही किया, प्रत्युत् जिस सत्य का उन्होंने उद्घाटन किया, उसका भावुक अन्त:करण वाले संसार-ग्रस्त प्राणियों को भी दर्शन कराया। सन्तों की यह शिक्षा जीवात्मा और परमात्मा को जोडने वाली कडी के समान ही है। सन्त पुरूष वास्तव में मार्गदर्शक गुरू है। महाराष्ट्र के सर्वश्री ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि सन्तों ने हमें भक्ति का सच्चा मार्ग दिखाया। श्री समर्थ रामदास स्वामी जी ने तो राज-कारण अपना कर मोह-निद्रा-ग्रस्त राष्ट्र की आँखें ही नही खोली, वरन् हमारी उस कर्म-भूमि पर मानव धर्म के अत्यन्त पवित्र और मूल्यवान् सत्य को प्रतिष्ठित कर लोगों को परमेश्वर-प्राप्ति का उत्कृष्ट मार्ग बताया। यही लक्ष्य उनके जीवन की परिणति बना।

श्री समर्थ स्वामी रामदास जी के पश्चात दो सौ वर्ष समाप्त होते - होते ही श्री अवधूत दत्तात्रेय इस पुण्य-भूमि पर श्री सद्गुरू साई बाबा के रूप में पुन: अवतीर्ण हुए। सन १८३८ से १९१८ पर्यंत ८० वर्षों की काल मर्यादा

में हिंदू-मुसलमान तथा अन्य धर्मो के असंख्य भावुक लोगों को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करने का श्री साई महाराज का कार्य निस्संदेह पुण्यतोया भागीरथी के पवित्र अविरत प्रवाह की भाँति ही सतत, अद्‌भुत और रहस्यमय ढंग से चलता रहा। श्री साईनाथ एक अवतारी पुरूष थे। उनका जन्म कहाँ हुआ, उनके परमपूज्य माता-पिता कौन थे और उनकी जन्म की जाति और धर्म क्या था, आदि प्रश्न आज भी अगम्य बने हुए है। इसीलिए उनका पवित्र जीवन-चरित्र तथा उनकी लीलाएँ अत्यंत हृदयस्पर्शी और मन को बरबस मोहित करने वाली बनी हुई है।

कुछ श्रद्धालु भक्तों का यह मत है की महाराष्ट्र के नाथ-संप्रदाय से संबंधित श्री साईनाथ वास्तव में नाथ ही थे, जो वर्तमान युग में पुन: इस पवित्र पृथ्वी पर प्रकट हुए। वे अयोनिज (जो मैथुनी सृष्टि से परे हो) थे। श्री साई महाराज की लीलाओं तथा उनकी अद्‌भुत शक्ति का यदि तटस्थ पवित्र भाव से मनन, अध्ययन किया जाय; तो अंत:करण में यह भावना उत्पन्न होती है कि श्री साई बाबा एक महान् अवतारी पुरूष थे। यद्यापि उन्होंने साढे तीन हाथ के पार्थिव शरीर का सन् १९१८ में त्याग किया, तथापि भावुक भक्तों के लिए वे आज भी अजर-अमर हैं। वे आज भी अपने भक्तों को स्वप्न में या जाग्रतावस्था में प्रत्यक्ष दर्शन देते हुए प्रतीत होते है। समाधि स्थल पर उनकी दिव्य अस्थियाँ आज, इस क्षण भी प्रेमी भक्तों कें कानों में मंजुल नाद करती प्रतीत होती हैं। यही कारण है कि आज सभी दिशाओं से हजारों लोग शिरडी क्षेत्र की यात्रा के लिए जाते हुए दृष्टिगत होते है। क्या यह श्री साईबाबा की दिव्य विभूति का ही चमत्कार और साक्षात्कार नही है?

महाराष्ट्र प्रदेश के औरंगाबाद जिले में 'धूपखेडा 'नामक एक छोटासा गाँव है। उस गाँव के घने जंगलो में ठीक दोपहर के समय चाँदभाई नामक एक धनी व्यापारी व्याकुल, मारा-मारा फिर रहा था। उसकी घोडी जंगल में कही खो गई थी, इसीलिए वह अत्यंत दु:खी था। वह घोडी उसे बहुत प्यारी थी।

जंगल के सभी दुर्गम मार्गों में तथा उन स्थानों पर जहाँ जल सुलभता से उपलब्ध था, घोडी की असफल खोज के पश्चात् वह दु:खी मन से, मुँह लटकाए, अपने गाँव को वापिस जाने के लिए मुडा ही था, कि अकस्मात् उसकी दृष्टि एक वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में बैठे हुए एक दिव्य देहधारी युवक पर पडी। उस युवक की दिव्य कांति तथा सुदृढ शारीरिक सौंदर्य को देख कर चाँदभाई को बडा आनंद हुआ। वह एक क्षण अपनी प्रिय घोडी के खो जाने का दु:ख भूल गया। श्रद्धापूर्वक विनत हो उसने उस ध्यानावस्थित युवक को सादर सलाम किया। उस दिव्य नवयुवक का वेष वहाँ के रीति-रिवाज को देखते हूए मुसलमानों जैसा था। अत: उसके दर्शन कर चाँदभाई के मन में यह संस्कार जागे कि यह युवक कोई बैरागी फकीर है। इसी भाव से चाँदभाई ने नम्रतापूर्वक हाथ जोड कर उस युवक को पुन: सलाम किया। उस तेजस्वी नवयुवक ने चाँदभाई को संबोधित कर उसे चिलम पीने के लिए आमंत्रित किया और साथ ही सामने की झाडी की ओर इंगित कर कहा, ''देखो, तुम्हारी घोडी सामने की झाडी के पीछे बडे मजे घास चर रही है। व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो ?''

चाँदभाई के आश्चर्य का ठिकाणा न रहा। उस युवक द्वारा दिखाई गई झाडी के पास उसकी घोडी सचमुच ही शांत स्वभाव से घास चर रही थी। चाँदभाई उसे पकड ले आया। उसके नेत्रों मे आनंदाश्रू छा गये। वैसे ही सजल नेत्रों से उसने पुन: एक बार उस बैरागी युवक को सलाम किया। उस दिव्य देहधारी युवक ने चाँदभाई को बडे प्रेम से पास बैठाया और उससे चिलम सुलगाने कि लिए कहा। चाँदभाई के सामने एक बडा प्रश्न उपस्थित हो गया। उसके पास चिलम की सारी सामग्री तो थी, पर तंबाकू सुलगान के लिए आँच नही थी। चाँदभाई के कुछ क्षण किंकर्तव्यतिमूढता और बेचैनी में बीते। तभी उस युवक ने अपनी दिव्य शक्ति से चाँदभाई की कठिनाई को जान कर समीप ही रखा हुआ अपना चिमटा जमीन पर दे मारा। जैसे शांत

सागर में सहसा बडवानल भडक उठता है, वैसे ही उस हरी-भरी घास से आच्छादित भूमि पर लाल-लाल धधकते हुए आँच के अंगारे फैल गये। उन्हे देख कर चाँदभाई दंग रह गया। दोनों ने ही पूर्ण आनन्द के साथ चिलम के कश लगाये।

चाँदभाई के मन में यह धारणा घर कर गई की हो न हो, यह युवक कोई सिद्ध औलिया है। इसी विश्वास के साथ चाँदभाई ने उस युवक से अपने घर चलने का बहुत आग्रह किया। परन्तु उस युवक ने यह कह कर कि तीन दिन पश्चात् वह स्वयं उसके घर जायेगा, चांदभाई से छुट्टी ली। चाँदभाई घोडी लेकर प्रसन्नता से अपने घर लौट आया। घर पहुँचने पर उसने जंगल में मिले औलिया की आश्चर्यभरी कहानी अपने गाँव वालों को सुनायी। चाँदभाई का अनुभव सुनते ही सभी लोंगो के मन में उस तरूण औलिया के दर्शन पाने की तीव्र उत्कंठा जागृत हो उठी। लगभग उन्ही दिनों चाँदभाई की पत्नी के भांजे का विवाह निश्चित हुआ। लडकी शिरडी गाँव की थी। जब घर में धूमधाम से विवाह की तैयारियाँ हो रही थी, तो एक दिन अकस्मात वही जंगल में देखा गया तेजस्वी युवक बैरागी वहाँ आकर खडा हो गया। सारे गाँव वालों ने उसका प्रेम से स्वागत सत्कार किया। चाँदभाई के घर के बारात शिरडी के लिए प्रस्थान करने ही वाली थी। कहते है, ''जब साधु-सन्त घर में प्रवेश करते है तो वह दिन दिवाली- दशहरे की भाँति ही आनन्द व सुखदायक होता है।'' घर पर उस युवक साधु का अनायास ही आगमन हुआ था, अत: उस यथार्थ में एक शुभ योग समझ कर चाँदभाई ने उस युवक को अपने ही घर ठहराया। बारात बडी सजधज और बाजे-गाजे के साथ शिरडी गाँव की ओर चल पडी। वह तेजस्वी युवक भी सब लोगों के साथ हो लिया।

शिरडी गाँव की सीमा पर खंडोबा का एक पुराना मंदिर था। उस मंदिर के आँगन में ही चाँदभाई के सब बारातियों ने अपना डेरा डाल दिया।

पर मंदिर के पुजारी ने उस बैरागी फकीर को मंदिर में प्रवेश करने की अनुज्ञा नहीं दी। युवक के शरीर पर शुभ्र श्वेत कफनी (बिना बाँह का लम्बा ढीला-ढाला कुरता) तथा मस्तक पर बँधे सफेद रूमाल को देखकर पुजारी की यह मिथ्या धारणा हो गई की वह युवक मुसलमान है, और इसीलिए उसने उसे मंदिर में प्रवेश करने से रोक दिया। इसमें पुजारी का भी वैसे कोई दोष नहीं था। उधर वह बाल ब्रम्हचारी मान अपमान की भावना से बिल्कुल अप्रभावित, चुपचाप मंदिर के बाहर एक वट-वृक्ष के नीचे बैठ कर अपनी चिलम पीने लगा। संयोग से उसी समय शिरडी गाँव के एक सद्गृहस्थ और उस खंडोबा-मंदिर के स्वामी म्हालसापति सुनार नित्य नियमानुसार वहाँ आए। वे खंडोबा के अनन्य भक्त थे। शिरडी गाँव एक बडी सडक के किनारे बसा था। इसलिए वहाँ लोगों का आना-जाना बराबर बना रहता था। गाँव में भी पर्याप्त चहल-पहल रहती थी। म्हालसापति गाँव में आने वाले साधु -सन्तो, गुसाई-बैरागियों कि, इतना ही नही, फकीर-मौलवियों की भी बडी आस्थापूर्वक आवभगत किया करते थे। मानो यह उनका स्वभाव बन गया था। बडे अनुभवी होने के कारण वह किसी भी मनुष्य की परख करने में अत्यंत कुशल थे। वृक्ष के नीचे बैठे उस दिव्य युवक पर जब म्हालसापति की दृष्टि पडी तो वह बरबस उसकी ओर आकर्षित हुए। सोलह वर्ष के उस कोमल युवक के नेत्रों में प्रखर, किंतु उतना ही सात्विक तेज देख कर म्हालसापति ने अनुमान लगाया कि यह कोई छोटा-मोटा फकीर नही है। ऐसी अन्त:प्रेरणा होते ही म्हालसापति ने तुरंत अत्यन्त स्नेह -आदरयुक्त स्वर मे पुकारा,''आओ साई !''यही साई नाम उस युवक ने अपने जीवन के अन्त तक धारण किया।

बाल्यावस्था में इतने चमत्कारी ढंग से शिरडी में प्रकट हुई उस युवक की मंगलमूर्ती आगे अपनी अत्यन्त रहस्यमयी लीलाओं तथा सदुपदेशों के कारण ''श्रीसद्गुरू साईनाथ महाराज'' के नाम से प्रसिद्ध हुई तथा अपना नाम अमर कर गई।

वही उन्होंने चाँदभाई का साथ छोड दिया और म्हालसापति के संग वे शिरडी गाँव में गये। गाँव में म्हालसापति ने अपने दो मित्रों, काशीराम शिंपी तथा आप्पा जागले से साई की भेंट करवाई। शिरडी गाँव में प्रवेश करने के समय इन्ही तीन सज्जनों से श्री साई महाराज का सर्वप्रथम परिचय हुआ और वे तिनो ही श्री साईके अनन्य भक्त बन गये। म्हालसापति को आगे बहूत वर्षों तक श्री साईमहाराज के दुर्लभ सत्संग का अलभ्य लाभ प्राप्त हुआ, किंतु काशीराम तथा आप्पा जागले कुछ ही वर्षों बाद परलोकवासी हो गए। संयोग की बात है। इन दोनों की एक ही दिन मृत्यू हुई। परन्तु इसे केवल संयोग कहने के बजाय श्री बाबा का आशीर्वाद कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

काशीराम ने श्री साई की तन,मन,धन से सेवा की थी। आरंभ में श्री साई महाराज को सफेद कफनी पहनने का अधिक शौक था। किन्तु काशीराम की इच्छा पूर्ण करने के लिए उन्होंने विशेष ढंग से सिलवाई गई गेरूआ अथवा हरे रंग की कफनी पहनने की परिपाटी आरंभ की। शिरडी में आने के पश्चात् श्री साई महाराज अपना अधिकांश समय प्राय: एक नीम-वृक्ष के नीचे बैठ कर ही बिताते थे। (आजकल यह स्थान 'गुरू-पादुका-स्थान' के नाम से प्रसिद्ध है।)

जिस नीम-वृक्ष के नीचे श्री साई सदैव बैठा करते थे, वह वृक्ष आज भी शिरडी में विद्यमान है। आरम्भ में इसी स्थान पर श्री साई महाराज का अपने भक्तों से उपदेशात्मक संलाप हुआ करता था। इस वृक्ष की जिस शाखा के नीचे श्री साई का आसन रहता था, उस शाखा के नीम के पत्ते आज भी स्वाद में अपेक्षाकृत कम कडुवे है। तथा अन्य सभीं शाखाओं के पत्ते अधिक कडुवे है। इस स्थान के संबंध में एक आख्यायिका प्रसिद्ध है। एक बार एक भक्त ने श्री बाबा से प्रश्न किया-''बाबा, आप सदैव यही क्यों बैठे रहते है ?'' इस पर श्री साई महाराज ने उत्तर दिया-''यहाँ मेरे गुरू की

समाधि है।'' इसके बाद भक्तों ने जब उस स्थान की खुदाई की तो एक सुरंग के नीचे बनी हुई समाधि देखकर उन्हें सचमुच ही बडा आश्चर्य हुआ। उस समाधि पर ताजे, सुगन्धित फूल चढे हुए थे और चारों ओर दीपक जल रहे थे। सन् १९१२ में डॉ. रामराव कोठारे जी ने श्री बाबा के लीये बम्बई से पादुकाएँ बनवा कर भिजवा दी। उपसनी महाराज के उनकी शुद्धि की तथा अन्य पवित्र संस्कार किये। तुदपरान्त श्री कमलाकर दीक्षित जी उन पादुकाओं को शिवजी (खंडोबा) के मन्दिर से अपने मस्तक पर रख कर श्री बाबा के पास ले गये। श्री बाबा ने उन पादुकाओं का कर-स्पर्श किया और ''ये सच्चिदानंद परमेश्वर के चरण है, इन्हें पवित्र नीम-वृक्ष के नीचे स्थान दीजिए,''ऐसा आदेश दिया। उसी के अनुसार श्रावण मास में पूर्णिमा के शुभ मुहूर्त में उन पवित्र 'गुरूपादुकाओं की नीम -वृक्ष के नीचे प्रतिष्ठा की गई।'

इस सुप्रसिद्ध नीम-वृक्ष के निकट ही जो बंजर भूमि थी, वहाँ श्री साई बाबा ने एक फूलों का बगीचा तैयार किया। अपने ही हाथों से लगाये गए फूलों क पौधो को सींचने के लिये वे स्वयं ही कंधों पर गगरी भर-भर कर जल लाया करते थे। इस समय की श्री साई महाराज की स्थिती को ''फटा पुराना पहनाता हूँ, जहाँ मर्जी हो, वहाँ बैठता हूँ दीवाने के भाँति भटकता हूँ, पर ब्रम्हाण्ड निगलता हूँ-''से समझा जा सकता है। वे कभी गाँव के नाले के आसपास भटकते फिरते थे, कभी नीम-वृक्ष के नीचे आकाश की ओर स्थिर, निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए ध्यान- मग्न अवस्था में बैठते थे या कभी लहर आयी तो किसी के भी खेत में घुस कर चिलम फूँकने के साथ-साथ केवल गप्पा लडया करते थे।

शरीर पर जो वस्त्र होते थे, उनकी श्री साई को कभी सुध-बुध नही रहती थी। उनका आचरण एक दीवाने, सिडी मनुष्य की भाँति ही रहता था। लोक भी उन्हें 'दिवाना फकीर' ही समझा करते थे और भरसक उपेक्षा की भावना से दखते थे। किन्तु संतों की आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में यह भी

एक अवस्था होती है। उनके दीवानेपन के कृत्यों का अर्थ समझना भी अति कठिन होता है। संतो का मार्ग बहुत गूढ होता है। उनके प्रत्यक्ष में अविवेकपूर्ण तथा विक्षिप्त दिखाई देने वाले गूढ आचरण का सही अर्थ समझने के लिए भक्तों का भी आध्यात्मिक दृष्टि से उतना ही उन्नत होना आवश्यक है।

शिरडी गाँव कि जिन निवासियों के द्वार पर श्री साई बाबा मधुकरी माँगते थे, वे सचमुच ही अत्यन्त भाग्यवान् थे। हाथ में टीन का पुराना बर्तन और कपडेकी मैली झोली लेकर री साई दो-चार घरों से भिक्षा माँगते थे। जितना अन्न प्राप्त होता था, उससे मिलाकर अपनी क्षुधा शांत करते थे। उन्होंने स्वाद की ओर तो कभी ध्यान दिया ही नही। जो कुछ मिलता था, उसे संतोष से ग्रहण करते थे। वे प्राय: ठीक दोपहर के समय भिक्षा माँगने के लिये निकला करते थे। पर इसका भी कोई नित्य नियम नही था। उनका समस्त आचरण जैसे मौज के अधीन ही रहता था। मन में आया तो पेट भर भोजन कर लेते थे; नही तो इकट्ठा किया हुआ सारा अन्न एक कुंडी में रख कर मार्ग में भटकने वाले कुत्तों तथा पशुओं का भाग्य जगाते थे। दीन-दुर्बल गरीब स्त्रियों और बच्चे श्री बाबा की एकत्र की हुई रोटियाँ उनकी आँखो के सामने ही चुरा कर ले जाते थे। किन्तु शांति के सागर एवं परम दयालू श्री साईबाबा उन्हे कभी कुछ नही कहते थे। श्री साई का मन सदैव संतुष्ट रहता था। माँग कर लाई हूई सारी भिक्षा वे उदारता से दीन-दुर्बल लोगों में बाँट देते थे और स्वयं जी भर कर पानी पीते और आकण्ठ भरे हुए पेट का दिखावा करने के लिए डकार लेते थे। प्राय: नित्य ही ऐसी घटना देखकर बायजाबाई नामक एक साध्वी स्त्री का कोमल हृदय विदीर्ण हो जाता था। यह स्त्री शिरडी गाँव के तात्या गणपत कोते पाटील की माँ थी। वह चटनी, रोटी तथा थोडी-सी सब्जी एक टोकरी में लेकर सिर पर रख कर लेती और नित्य श्री साई महाराज के पीछे-पीछे जंगल में चली जाती। श्री बाबा की खोज में उसे कई बार दो-दो कोस धूप में इधर-उधर भटकना पडता था। किसी नाले के किनारे झाडी

में ध्यानमग्न स्थिती में शांति से बैठे हूए श्री साई महाराज के आगे बायजाबाई केले के पत्ते पर टोकरी में लाया हुआ भोजन रख देती थी और श्री बाबा उसे ग्रहण करने के लिए आग्रह करती थी । यदि लहर आई तो श्री साई चुपचाप भोजन कर लेते थे, अन्यथा क्रोध में आकर बायजाबाई को मारने के लिए दौडते थे । परंतु बायजाबाई का अध्यवसाय तथा उसकी भक्ति सचमूच ही स्पर्धा की वस्तू थी। वह भी शांतिसे उनका क्रोध सहन करती थी और अन्त में श्री बाबा को दो-चार ग्रास खाने के लिये बाध्य कर ही देती थी । कभी-कभी तो वह उन्हें एक छोटासा बच्चा समझ कर स्वयं अपने हाथों से खिलाया करती थी । श्रीसाई महाराज अन्न ग्रहण नही करते थे तो वह स्वयं भी भोजन नही करती थी, ऐसा उनका नियम था । बायजाबाई ने अपनी मृत्यू तक इस नियम का दृढता से निर्वाह किया ।

कुछ वर्षों के पश्चात् श्रीसाई महाराज ने बायजाबाई का प्रेम देख कर ग्राम के समीप ही एक पुरानी तथा जीर्ण-शीर्ण मस्जिद में अपना आसन स्थिर किया । इस प्रकार श्री बाबा के पीछे-पीछे फिरने में बायजाबाई को जो कष्ट होता था, वह दूर हो गया । स्व. बायजाबाई के सुपुत्र श्री तात्या पाटील को भी अपनी अखंड गुरूसेवा का उत्तम फल प्राप्त हुआ और उन्हें भी सद्गति मिली।

गाँव की जिस मस्जिद को श्री साई महाराज ने अपना निवास स्थान बनाया था, वह उस समय बिल्कुल विनष्टप्राय अवस्था में थी । गाँव का कोई भी मनुष्य वहाँ फटकता नही था । वहाँ किसी मुसलमान पीर के अस्तित्व का चिन्ह या पुरानी कब्र आदि कुछ भी नही था । केवल मिट्टी की चार दीवारें तथा उपर खपरैल का एक छप्पर था । श्री साई महाराज जब से इस स्थान पर रहने आये, तभी से उनकी दिनचर्या में थोडी नियमितता तथा व्यवस्था आ गई । गाँव के भक्त लोग भी अधिक संख्या में उनके पास आने लगे । शिष्यों ने उस स्थान को नित्य साफ सुथरा रखने और उसे गोबर-मिट्टी से लीपने का कार्य

सेवाभाव से अपने ऊपर ले लिया। श्री बाबा ने भी उनके इस कार्य में किसी प्रकार से रूकावट नही डाली। श्री साई महाराज ने अपने सहवास से पुनीत हुए उस स्थान को 'द्वारकामाई ' का नाम दिया। वहाँ एक घंटा बाँधा गया। राम-नाम का जयघोष आरंभ हुआ और अग्नि देवता को प्रसन्न करने के लिये भिक्षा द्वारा प्राप्त लकडियों से अक्षय धूनी प्रज्वलित की गई। श्री बाबा के मंगल आशीर्वाद से आज भी धूनी अखण्ड, एक क्षण के लिय भी न बुझते हूए, जल रही है और उस से उत्पन्न हुई भस्म हजारों लाखों भक्तों के अंत:करण को शांति तथा समाधान प्रदान कर रही है।

श्री साई महाराज का उठना-बैठना नित्य द्वारकामाई में ही रहता था तथा सोने का स्थान एक रात को द्वारकामाई में तथा एक रात निकट ही स्थित 'चावडी'(पडाव या चट्टी) में रहता था। शिरडी आगमन के पश्चात् सर्व प्रथम जिन म्हालसापति से श्री साई महाराज की भेट हुई थी, वह श्री बाबा के साथ नित्य द्वारकामाई में सोते थे। रात्रि में एक -दो बजे तक गुरू-शिष्य का भाँति-भाँति के गूढ विषयों पर वाद-विवाद हुआ करता था।

श्री साई महाराज को दीप जला कर प्रकाश करने का बडा चाव था। प्रति दिन संध्या के समय वे गाँव के दूकानदारों से तेल की भिक्षा माँगने के लिये जाते थे। दूकानदारों के द्वारा दिया हुआ तेल मिट्टी के दीयों मे डालकर द्वारकामाई के दोनों ओर सर्वत्र प्रकाश करते थे और स्वयं सामने ही एक पत्थर की भव्य शिला पर बैठ कर दूर से ही इस प्रकाश का आनंद लेते थे।

जब यह कार्यक्रम नित्य-प्रति होते लगा तो गाँव के दुकानदारों ने तंग आकर एक दिन यह निश्चय किया कि श्री बाबा को तेल न दिया जाय। नित्य नियमानुसार जब उनका दीवाना फकीर तेल माँगने के लिए बाजार में निकला, तो किसी ने भी उसे तेल नही दिया। कुछ दुकानदारों ने तो श्री बाबा को फटकार कर उन्हे दूकान से बाहर निकाल दिया। मुख से एक शब्द का भी उच्चारण किये बिना श्री साई महाराज द्वारकामाई लौट आये। अपने बाँये

हाथ की मुट्ठी पर ठोडी रखे हुए वह विचार-मग्न बैठ गए। फिर एकाएक झटके के साथ उठकर खडे हुए और अपना उद्योग आरम्भ किया। मिट्टी के बने हुए समस्त दीयों में उन्होने रूई की वर्तिकाएँ रख दी। फिर उस टीन के बर्तन में जो थोडा बहुत तेल था, उसमे जल मिला कर उस सारे तेल मिश्रित जल को पी गए। इसके बाद फिर उस टीन के बर्तन में उन्होंने जल उघल दिया और उसी जल को थोडा-थोडा हर एक दीप में डालने लगे। सब दीयों में पानी डाल कर श्री बाबा ने सारे दीए जला कर दिखाये। गाँव के सभी हठधर्मी दूकानदार तथा अन्य लोग वही खडे-खडे उस दीवाने फकीर का वह व्यर्थ का उद्योग देख रहे थे। पर, तेल के स्थान पर पानी से जले हुए दीये देखकर उन सबकी गर्दने लज्जा से झुक गई। वे आश्चर्यचकित रह गये। पानी से जलाए गए मिट्टी के दीए रात भर जलते रहे। इस चमत्कार को देख कर सब की आँखे खुल गई। 'चमत्कार के बिना नमस्कार नही,' यह कहावत ठीक ही है। सब दूकानदारों को अपने किये हुए कृत्य पर घोर पश्चाताप हुआ। उन्होंने सजल नयनों से श्री साई महाराज से क्षमा-याचना की और वे उनके चरणों पर गिर पडे। श्री बाबा ने भी उदार अंत:करण से उनके अपराध के लिए उन्हें क्षमा किया और सदुपदेश दिया। एकाएक जैसे किसीने जादू या मंत्र का प्रयोग किया गया हो, श्री साई महाराज का यह चमत्कार सर्वत्र विख्यात हो गया। लोगों की भावनाएँ बदल गई। भक्तपरिवार अधिकाअधिक बढता ही गया और श्री साई महाराज का नाम सब छोटे बडे लोगों की जिव्हा पर चढ गया।

जिस दिन श्री साई बाबा चावडी में सोते थे, उस दिन ब्रम्हमुहूर्त में उनकी आरती करने की प्रथा भक्त लोगों ने आरम्भ की। आरती के बाद भक्त लोग बाजे-गाजे के साथ उन्हे द्वारकामाई में लाते थे। यह दृश्य जिन्होनें अपनी आखों से देखा था, उनका कहना है की उस काल में सूर्य की कोमल किरणों के प्रकाशमान होने से पूर्व ही, संधि-काल में श्री साई का मंगल-दर्शन निश्चय ही अत्यन्त मोहक तथा नयंनाभिराम होता था। आरती के समय

उनके मुख पर दिव्य तेज प्रदीप्त हो उठता था। उनकी कान्ति अति तेजपुंज दिखाई देती थी । ऐसे समय श्री साई महाराज बहुधा शांत रहते थे । पर किसी-किसी अवसर पर वह इतने क्रोधीत दिखाई देते थे, मानो उन्होने नृसिंहावतार ही धारण किया हो उस समय उनके पास जाने का साहस उनके निकटतम भक्त लोगोंमे से भी किसी को नही होता था । अथांग सागर की भाँति उनकी मन:स्थिती की भी उताल लहरे उठती थी ।एक क्षण में शांत, निर्मल तो दूसरे क्षण मे भयानक तूफान। उद्वेलित मन:स्थिती के इन क्षणों में वे द्वारकामाई से चावडी तक तीव्र गति से चक्कर लगाते थे। परंतु कुछ समय के बाद शांत होकर पत्थर की शिला पर बैठ जाते थे।

प्रात:काल श्री बाबा हाथ-मुँह धो कर थोडा समय गाँव में जा कर पूर्वनिश्चित घरों से भिक्षा माँगने में व्यतीत करते थे। तत्पश्चात् 'लेंडी बाग' की ओर चल देते थे । श्री साई महाराज के भक्त परिवार में एक कुष्ठरोगी भागोजी भी था। श्री बाबा जब 'लेंडी बाग' जाते थें, तब भागोजी उन पर छत्र धरे हुए 'लेंडी बाग' में प्रवेश करते थे और वहाँ घंटा-डेढ घंटा बिताते थे। श्री साई महाराज ने अपने साथ 'लेंडी बाग' में किसी को भी प्रवेश नही करने दिया। प्रकटत: तो वे प्राप्त: कर्मों से निवृत्त होने के लिय ही उस बाग में जाते थे, पर वहाँ अल्प समय के लिये भी क्यों न हो, वे सम्भवत: लोगों से दूर रहकर एकांत में सिद्धिसाधना करते होंगे।

श्री बाबा के बाग से लौटने के पश्चात् दोपहर की आरती होती थी और इसके उपरांत सब लोग भोजन करते थे। भक्त लोगों का परिवार जैसे - जैसे बढता गया, वेसै-वैसे श्री साई महाराज का क्षेत्र तथा प्रभाव चंद्रकला की भाँति शनै:शनै: बढता गया। थोडे समय दोपहर तथा संध्या बेला में श्री बाबा भक्त लोगों के बीच बैठकर इधर-उधर की बातें करते थे। उनकी बोलने की पद्धति अनोखी एवं विशिष्ट प्रकार की होती थी। उन्हे अष्टसिद्धियाँ प्राप्त हुई थी, इसमें तिल भर भी संशय नही किया जा सकता। अपने सम्मुख बैठे हुए

किसी भी छोटे-बडे व्यक्ति के मन की भली-बुरी भावनाओं को वे सही -सही जान लेते थे और थोडी व्याजोक्ति के साथ सब के सामने उन कि चर्चा करते थे। जिस व्यक्ति से उन की बातों का सम्बन्ध होता था, वह अपने मन में सब कुछ समझ कर श्री साई महाराज के चरणों मे अपना मस्तक झुका देता था। श्री बाबा के कई भक्त इन्हें साधकों के लिए सिद्ध पुरूष से भी बढ कर साक्षात् परमेश्वर का अवतार ही समझते थे। पर श्री साई महाराज बोलते या उपदेश करते समय कभी भी इस प्रकार के अधिकार का दावा नही करते थे। उनके प्रवचनों में सदैव 'परमेश्वर का सेवक', अल्ला का बंदा आदि शब्दों का प्रयोग होता था। वे स्वयं कहा करते थे, ''मुझ पर मेरे गुरू की पूर्ण कृपा है। मै तो निमित्तमात्र हूँ। गुरू की कृपा तथा उनके आशीर्वाद से मैं भक्तों को संकटों से मुक्त करता हूँ और उन्हें सन्मार्ग की दिशा बतलाता हूँ।''बाद के साठ वर्षो में उनके शिष्य संप्रदाय में हजारों की वृद्धि हुई; किन्तु उनमें से किसी भी व्यक्ति के समक्ष श्री साई महाराज ने ''अनल हक्क'' याने 'मै परमेश्वर हूँ' इस प्रकार के उद्गार अपने मुख से व्यक्त नही किए। ''मैं तो केवल परमात्मा से परिचय करवाता हूँ, मै स्वयं भी दयाधन परमात्मा का बंदा, सेवक हूँ'' यही वे सब सेकहते थे। केवल मुख से ही कुछ कहने के बजाय हाथों से भाव दिखाने की ओर ही श्री साई महाराज का झुकाव अधिक होता था। किसी धर्मोपदेशक की भाँति लम्बे-लम्बे प्रवचन या व्याख्यान दे कर सदुपदेश करने का श्री बाबा ने कभी प्रयत्न नहीं किया। सहज ढंग से ही कोई लीला वे कर बैठते थे और उसका गहन गूढ अर्थ समझने के लिए अन्य लोगों को तो अपनी बुद्धि पर जोर डालना पडता था।